International Journal of Applied Research 2023; 9(3): 01-05

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(3): 01-05
www.allresearchjournal.com
Received: 01-12-2022
Accepted: 06-01-2023

किरन पूनिया
एसोसिएट प्रोफेसर,
डी.ए.वी. कालेज (लाहौर),
अम्बाला, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
किरन पूनिया
एसोसिएट प्रोफेसर,
डी.ए.वी. कालेज (लाहौर),
अम्बाला, हरियाणा, भारत

स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास

किरन पूनिया

सारांश
स्त्री और पुरुष, समाजनिर्माण के दो आवश्यक अंग हैं-, जो एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में भी स्त्री और पुरुष को शिव और शक्ति के समान हैं। वे एक ही जीवसत्ता के दो अधूरे भाग हैं।

कूटशब्द: स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य, मैत्रेयी पुष्पा, समाज-निर्माण

प्रस्तावना
"वैदिक ऋषियों ने नारी की स्तुतियों, प्रार्थनाओं तथा आनुष्ठानिक कार्यों में स्थान प्रदान कर उसकी गौरवमयी उपस्थिति को दर्शाया है। नारी का यह गौरव-गान कभी उपमा-रूपक के रूप में, तो कभी साक्षात देवियों के संस्तवन के माध्यम से प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेद में अदिति, उषा, इड़ा, भारती आदि वैदिक देवियाँ स्त्री स्वरूप की प्रतिनिधित्व करती हुई अनेक तत्त्वों की अधिष्ठात्री देवियां हैं। ये कहीं-कहीं, देव, माताएं और कहीं-कहीं देव कन्याएँ मानी गयी हैं। ये राष्ट्रीय सम्पदा की जननी है तथा पूजन क्रम में इनका प्रथम स्थान है।"[1] परन्तु समय बीतने के साथ-साथ स्त्री की स्थिति अवनति की ओर बढ़ने लगी। वह अनेक वर्जनाओं का शिकार होती चली गई। वर्तमान समय में जब स्त्री अपने स्वत्वधिकारों के प्रति जागरूक हुई है तो वे हाशिए को तोड़ते हुए, अपनी चुप्पी एवं मौन को गहरे अर्थ देने लगी हैं। अपने अस्तित्व और अस्मिता की तलाश एक सशक्त धारा हिन्दी साहित्य में भी प्रवाहित हो रही है। आज का साहित्य स्त्री को देवी, शक्ति, माया, सौन्दर्य या अबला के रूप में न देखकर संसार की एक ठोस सच्चाई के रूप में देखता है और उससे सम्बन्धित समस्याओं की पड़ताल करता है। आज इस विमर्श को 'स्त्री विमर्श' के नाम से जाना जाता है और यह हिन्दी साहित्य में एक

ज्वलंत मुद्दा बनकर उभरा है। इस विषय पर अनेकानेक रचनाकारों ने रचनाएं प्रस्तुत कीं, जिनमें एक बड़ी संख्या महिला रचनाकारों की रही।

साधारणतयः स्त्री विमर्श का अर्थ यह लिया जाता है कि यह पुरूषों के बहिष्कार या पुरूषों से टकराव का विमर्श है। परन्तु वास्तविकता इससे कुछ भिन्न है। 'यह स्त्री-पुरूष समानता की बात करता है, जिसे प्राप्त करने के लिए स्त्री को स्वयं आगे बढ़कर प्रयास करने होंगे।'[2] 'स्त्री विमर्श, स्त्री स्वतन्त्रता का आग्रह है क्योंकि औरत जन्म नहीं लेती बल्कि उसे बनाया जाता है।'[3] रमणिका गुप्ता इस संदर्भ में लिखती हैं, ''स्त्री विमर्श एक मानवीय दृष्टि है जो प्रतिष्ठा के स्तर पर भी समानता की पक्षधर है। स्त्री-विमर्श मानसिकता में परिवर्तन लाता है और समाज को विशेषकर स्त्री को स्त्री के प्रति एक नयी दृष्टि देता है।''[4] वस्तुतः स्त्री विमर्श केवल नारी की मुक्ति से निरूपित नहीं होता अपितु विमर्श, शब्द-विवेचन, विचार, समीक्षा, परीक्षा, ज्ञान और कोशगत अर्थ में चरम बिन्दु को परिभाषित करता है। इस दृष्टि से गहरे अर्थ वाला यह शब्द नारी मुक्ति या नारी स्वतन्त्रता के साथ नारी की अस्मिता, चेतना, स्वाभिमान आदि तत्त्वों को अपने भीतर समेटे हुये है। नारी का अपने जीवन जीने का ढंग व अपने शरीर पर स्वयं को कर्ता बनाने का प्रयास या आत्म निर्णय की क्षमता हासिल करना नारी विमर्श के अन्तर्गत आता है।

महिला रचनाकारों के साथ हिंदी साहित्य विशेषकर कथा साहित्य में स्त्री विमर्श एक विशेष उत्थान के साथ पल्लवित-पुष्पित हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा भी ऐसी ही चर्चित रचनाकार है, जिसके इदन्नमम, चाक, अल्मा कबूतरी, अगनपाखी आदि उपन्यासों में नारी संघर्ष मुख्य रूप से उभर कर सामने आया है। मैत्रेयी ने इदन्नमम से जो शुरूआत की थी उसे चाक, अल्मा कबूतरी से आगे बढ़ते हुए अगनपाखी तक पहुँचाया है। इदन्नमम उपन्यास की बऊ, मंदाकिनी और कुसुमा वास्तविक अर्थों में ऐसी जुझारू स्त्रियां हैं, जो केवल परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए निर्मित बन्धनों को ही नहीं तोड़ती वरन् उस शोषण के विरूद्ध भी तनकर खड़ी होती है जो आज के नेताओं, माफिया और ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों और ग्रामीणों पर कहर के रूप में बरसाया जा रहा है। गांव की क्रुरता, अनीति तथा अवमानना के खिलाफ ये तीनों स्त्रियां जागृत होकर गांव की क्रुरता का डटकर सामना करती है। राजनीति की दोहरी नीति पर बऊ अभिलाख की आलोचना करते हुए कहती है, ''अभिलाख यार दोस्त ही तो था महेंदर के, पर नहीं देख गई महेंदर की बड़ी-बड़ा। देखते-देखते दुश्मन हो गए। विरोधी पाल्टी में जा मिले।''[5] वहीं बहु के भाग जाने पर वह पोती मंदा को अपने भरोसे पालती-पोसती है। अदालत में मुकदमा दायर हो जाने पर चीफ साहब को भी स्पष्ट शब्दों में कहती है, ''चीफ तुम फिकीर जीन करो। लड़ने दो उस कंजरी को... जब तक इस काया में पिरान हैं, लड़ेंगे हम भी। पूरी जिंदगानी हमने लड़ाई लड़ी है हँसी-खेल नहीं है। जिमिंदारीन बने रहना।''[6] वह किसी भी हालत में अपने बेटे की आखरी निशानी को खोना नहीं चाहती।

कैलाश मास्टर द्वारा मंदा का बलात्कार किए जाने पर कुसुमा उसकी (मास्टर) जमकर पिटाई करती है। उसके हाथ-पाँव तोड़ देती है। उसकी उपेक्षा करते हुए कहती है, ''अरे तेरी नास हो जाए। ठरी बंधै तुम्हारी। हुलकी परै तुम पै... भोरी मतारी, जे कैलसवा! कैलास मास्टर! तब तोय नहीं छोड़ेंगे हम! मंदा मामा कहके टेरती है, सो भी नहीं ख्याल किया? फिर काहे को बहन-भानजी मानने का स्वाँग भरते हो? बच्छत! कुकरमी। अधरमी।''[7] कुसुमा शेरनी की तरह कैलास पर टूट पड़ती है और मंदा को सहानुभूति के साथ समझाती है कि जिंदगी में अच्छा-बुरा घट जाता है। जो तुमने

किया ही नहीं उसके लिए स्वयं को दोषी क्यों मानना। इनसे डरना नहीं बल्कि उसके खिलाफ दृढ़ आवाज उठाना। कुसुमा द्वारा पति के खिलाफ आवाज उठाना, कैलाश की पिटाई करना, मंदा को समझाना एक ऐसी स्त्री के लक्षण हैं, जो अपने अधिकारों को जानती व भली भांति समझती है।

अभिलाख से संघर्ष करना, पिता का सपना पूरा करने हेतु गांव में अस्पताल बनाना, भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाना, गाँव का विकास करवाना, विस्थापित किसानों के लिए आंदोलन करना, मज़दूरों को संगठित कर उनमें चेतना भरना, अभिलाख के शोषणों का खात्मा कर उसे चुनौती देना इत्यादि ऐसे उदाहरण हैं जो मंदा को एक जाग्रत व दृढ़ निश्चयी नारी के रूप में स्थापित करते हैं। गोपालराय के विचारों में, "इदन्नमम की मंदाकिनी वास्तविक अर्थों में एक जुझारू युवती है जो केवल परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए निर्मित बंधनों को ही नहीं तोड़ती वरन् उस शोषण के विरूद्ध भी बनकर खड़ी होती है जो आज के नेताआं और माफिया व ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों और अन्य ग्रामीणों पर कहर के रूप में बरसा जा रहा है।"[8] 'इदन्नमम' में तीन पीढ़ियों की कथा एक साथ कही गयी है। बऊ की पीढ़ी जिन मार्गों से चली है, वह घर की देहरी के भीतर समाप्त हो जाती है। मन्दा की माँ का चरित्र रेशमी अक्षरों से गढ़ा गया है, जिसकी चिकनी परत के आकर्षण में वह फिसल जाती है और अपने पति की मृत्यु के पश्चात् प्रभावशाली बहनोई के साथ भाग जाती है। परन्तु मन्दा के चरित्र में परिवर्तन की उच्चता है और उसमें आत्मसात् करने की समन्वयात्मक प्रवृत्ति है।

'चाक' उपन्यास की कहानी अतरपुर नामक गाँव की कहानी है। एक-दूसरे से दुश्मनी निभाने वाले गाँव के प्रमुख सदस्य तथा एक-दूसरे से लड़ती-झगड़ती औरतें यहां परम्परागत पुरूष समाज का शिकार होती दिखाई देती हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही उन औरतों की जानकारी प्राप्त होती है जिन्होंने सतीत्व के नाम पर अपनी बलि चढ़ाई है। मधु सन्धु के अनुसार, "अतरपुर गाँव की औरतें अहं शील और सतीत्व की रक्षा के नाम पर बलि चढ़ा दी जाती हैं। सीता की तरह भूमि प्रवेश करती हैं। इस गाँव के इतिहास में ऐसी अनेक दास्तानें दर्ज हैं। रूकमिणी रस्सी के फंदे से झूल जाती है। रामदेई कुएं में कूद जाती है। नारायणी करबन नदी में समाधि लेती है। चंदना ससुराल के रास्ते में ही पति के द्वारा मौत के घाट उतार दी जाती है। रानी मंठना को देश निकाला और मृत्युदण्ड एक साथ मिलते हैं। हर हालात में पुरूष की जात बस अपनी ही सगी होती है।"[9]

उक्त उपन्यास की पात्र रेशम एक विद्रोही प्रवृत्ति के साथ सामने आती है। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पति दूसरी शादी कर सकता है और पत्नी का मात्र जीवन भर उसके दुख में डूब रही, यह उसे स्वीकार नहीं है। वह जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति को आवश्यक समझती है। वह अपनी सास से कहती है, "माइयों ! तुम मेरे पीछे क्यों पड़ गई हो। मेरे चालचलन की झंडी फहराना जरूरी है। बिरथा की छानबीन करने में लगी हो। आज को तुम्हारा बेटा मेरी जगह होता तो पूछती कि तू किसके संग सोया था? अब उसकी बाँह बह ले। मेरे मरे पीछे तेरहीं तक का भी सबर न करता और ले आता दूसरी। तुम खुश हो रहीं होती कि पूत की उजड़ी जिन्दगी बस गई। पर मेरा फजीता करने पर तुली हो।"[10] बेड़ियों को तोड़कर स्वतंत्र जीवन जीने का दण्ड समाज उसे देता है। रेशम का विद्रोह एक मूक चीख बनकर रह जाता है। छल से मारी गयी रेशम के हत्यारों को सजा दिलाने का प्रण उसकी बहन सारंग करती है। सारंग समस्त उपन्यास में कई स्तरों पर लड़ती है- सबसे पहले अपने-आप से, अपने अन्दर बैठी उस सारंग से जो परम्परागत है, घर के सदस्यों से तथा गाँव के ठेकेदारों से। सारंग का पति उसे

एक वस्तु बनाकर उसका उपभोग करना चाहता है। परन्तु वह उससे संघर्ष करके अपने आप को व्यक्ति बनाकर रखती है। सारंग पुरूष प्रधान समाज को सबसे बड़ा धक्का तब देती है, जब वह चुनाव में खड़ी होती है। श्रीधर तथा ससुर की प्रेरणा से हाँ-ना करते-करते लोकहित के लिए गाँव की राजनीति से ऐसे जुड़ती है कि चुनाव में खड़े होकर चुनाव जीत भी जाती है। उसकी यह जीत उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को व्यक्त करती है। इस प्रकार सारंग में एक ऐसी संकल्प शक्ति है जो उसे अन्याय से लड़ने, आततायी का मुकाबला करने तथा नारी अधिकारों के लिए जान तक दे देने की हिम्मत और दृढ़ता उत्पन्न कर देती है। उपन्यास में सारंग के साथ-साथ गुलकंदी, कलावती चाची, लौंगसिरी बीबी आदि औरतों की अपनी-अपनी कहानियाँ हैं जो अलग-अलग मान्यताओं को ओढे हुऐ हैं। कभी-कभी यह औरतें सारंग की ताकत बनकर उसके पीछे खड़ी होती हैं और पुरूष समाज पर भारी पड़ती है। कहीं देव ताप के कारण तो कहीं पुरूष-नारी के लिए बने अलग-अलग मानदण्डों के कारण और कहीं अपने बौद्धिक विकास के कारण। ये औरतें उन विदेशी औरतों से भी कहीं आगे दिखाई देती हैं जो रास-रंग, नाच-गाने में तो पुरूषों का साथ देती हैं परन्तु वायसराय या शासक कभी नहीं रहीं।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबूतरी नामक जनजाति की स्त्री व्यथा को प्रस्तुत किया गया है जो समाज के बनावटी मुखौटे को उखाड़ फेंकती है। मैत्रेयी की कथा नायिका तार्किक प्रगतिशीलता के अनुरूप गतिशील होती है। तार्किक प्रगतिशीलता का ही परिणाम था कि कबूतरी जैसी पेशा प्रवृत्ति जाति की भूरी अपने बेटे राणा को पढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित होती है, "पतिविरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। मैं अपने मर्द की ब्याता खुद को तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा-लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुजरना पड़े। मैं किसी मर्द की बाँह पकड़कर क्या रामसिंह के बाप को भूल जाऊँगी? भूल भी जाऊँ तो उसकी सही बात नहीं भूल पाऊँगी।... जिन दिन बाप की लात खून नीली स्याही में बदलकर अपने हक में चार अंक लिख लिये, समझूँगी मुझमें राई भर कलंक नहीं। विद्या रतन के आगे देह का खजाना कुछ भी नहीं...।[11] केवल भूरी ही नहीं, उसके आगे की दूसरी पीढ़ी में भी यही चेतना परिलक्षित होती है और कदमबाई भूरी के मार्ग पर चलकर अपने बेटे और 'कज्जा' की सन्तान राणा को शिक्षा दिलाने स्कूल भेजती है। तीसरी पीढ़ी की अल्मा तो बहुत बड़ी राजनेता बन जाती है उसे विधायक का टिकट तक मिल जाता है। अल्मा के अतिरिक्त भूरीबाई और कदमबाई के जीवन संघर्ष के माध्यम से भी लेखिका ने स्त्री पुरूष सम्बन्धों में परस्पर सहयोग और पूरकता का समर्थन किया है। मैत्रेयी के कथा-साहित्य में नारी का परिवर्तित स्वरूप स्पष्टतः परिलक्षित होता है। नारी थोथी परम्पराओं के मकड़जाल में छटपटाती नहीं है, उस जाल को काटती है। ये परम्पराएँ चाहे यौन सम्बन्धी हों, वैवाहिक हों, पारिवारिक हों, आर्थिक हों अथवा जातीय हों।

'अगनपाखी' उपन्यास में पुरूष समाज द्वारा स्त्री पर किये अत्याचार का अंकन है। इसमें नारी की व्यथा, पीड़ा और समर्पण का चित्रण हुआ है। स्वार्थपरक पुरूष असहाय स्त्री का लाभ उठाकर अत्याचार करता है। उपन्यास की नायिका भुवन सामन्ती परिवार की नारी संहिता को लांघकर तांत्रिक और साधुओं का अन्याय सहन नहीं करती, वह विरोध करती है। विधवा भुवन के परिवार वाले उसे भी मृतक दिखाकर उसके नाम की जमीन-जायदाद हड़पने की कोशिश करते हैं। वह जायदाद हड़पने वाले कुंवर अजयसिंह का घोर विरोध करती है। सामाजिक रूढ़ मान्यताओं को त्यागकर अपने

अस्तित्व को बचाए रखना चाहती है। यहां लेखिका भुवन के माध्यम से यह बताना चाहती है कि हक माँगना अपराध नहीं है परन्तु घर के ही लोग यदि कोई अनुचित व्यवहार करते हैं तो उसे पाठ पढ़ाना कोई गलती नहीं है। स्वयं पर हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़ना ही नई सोच है और इसी से व्यक्ति में आत्मनिर्भरता और वैयक्तिक चेतना विकसित होती है।

उक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की नारियां अपनी मुक्ति और अधिकारों की प्राप्ति के तथा अस्मिता की रक्षा के लिए साहसपूर्ण कदम उठाने की पहल करती हैं। प्रश्न चाहे कार्यक्षेत्र का हो या जीवन साथी चुनने का, वे अपना निर्णय खुद लेती हैं। वह न केवल आत्मबल से रूढ़ हो चुकी मान्यताओं को तोड़ती हैं बल्कि सकारात्मक ढंग से अपने व्यक्तित्व की रचना भी करती हैं। स्त्री विमर्श के इस दौर में वे उन सभी परम्परागत मूल्यों को नकारती है जो नारी के समग्र विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत किया है। विवेचित उपन्यासों लेखिका के बाह्य और आंतरिक परिवेश से संघर्ष की गाथा है जिसमें वह पुरुष सतात्मक परिवेश में निर्मित स्त्रीपन से छुटकारा पाकर अपनी अस्मिता को एक आकार प्रदान करती है और अंततः वह अपने लेखन के माध्यम से साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त करती है।

सन्दर्भ

1. सं. कल्पना शर्मा, ले. भारतीय साहित्येतिहास: स्त्री विमर्श, ज्ञान प्रकाश द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम सं. 2009, पृ. 188
2. शशिकला त्रिपाठी, स्त्री विमर्श का मतलब पुरूष बहिष्कार नहीं, कल्पना वर्मा (संपा.), स्त्री विमर्श विविध पहलू, लोक भारती प्रकाशन, 2001, पृ. 27
3. सीमोन द बोउवार, द सैकेंड सेक्स, प्रभा खेतान (अनु.), स्त्री उपेक्षिता, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्र. सं. 1960, पृ. 30
4. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति: संघर्ष और इतिहास, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, सं. 2008, पृ. 70
5. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2006, पृ. 17
6. वही, पृ. 77
7. वही, पृ. 106
8. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2013, पृ. 387
9. मधु सन्धु, महिला उपन्यासकार, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, सं. 2000, पृ. 115
10. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2009, पृ. 19
11. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, किताबघर, दिल्ली, सं. 2000, पृ. 74-75